International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 15-11-2021, Accepted: 30-11-2021, Published: 16-12-2021
Volume 7; Issue 6; 2021; Page No. 83-84

मूल्यांकन पद्धति में पुनर्रचना की आवश्यकता– क्यों?

डॉ. आभा सिंह
सहयोगी आचार्य एवं हिन्दी विभाग प्रमुख, वी. एम. वी. महाविद्यालय, वर्धमान नगर, नागपुर, महाराष्ट्र, भारत

सारांश
शिक्षा न केवल मनुष्य को सुसंस्कृत बनाती है अपितु यह हमारी संवेदनशीलता को भी बढ़ाती है जिससे राष्ट्रीय एकता पनपती है, वैज्ञानिक समझ बढ़ती है और कुल मिलाकर संविधान द्वारा प्रतिष्ठित समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता होती है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समाजिक व नैतिक मूल्यों को सशक्त बनाने के लिए प्रयास किए जाना अनिवार्य है। शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए हम आंतरिक मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति पर अधिक निर्भर रहते हैं। निःसंदेह मूल्यांकन की प्रक्रिया की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता परंतु मूल्यांकन परंपरा का निर्वहन करते समय आवश्यक यह हो गया है कि हम अपनाए जा रहे मापदंडों के लाभ और हानि से परिचित हो जाएं। यदि मूल्यांकन पद्धति संख्यात्मक उपभोग कर रही है और गुणात्मक उत्पादन करने मे असमर्थ है तो उस मूल्यांकन पद्धति में सुधार की आवश्यकता है। नीति निर्धारण करने वालों को यह देखना होगा कि आर्थिक नफा–नुकसान की धुरी पर शिक्षा को नहीं देखा जा सकता क्योंकि यह समाज के उस वर्ग को नैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जिम्मेदारी उठाने का साहस देने का माध्यम है, जिसे हम भविष्य कहते हैं।

मूलशब्द: आंतरिक मूल्यांकन, भविष्य की अनिश्चितता, केवल भीड़

प्रस्तावना

सन 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में पराजय के बाद भारतीयों ने अपनी रणनीति की दिशा बदल दी क्योंकि वह उस समय की नितांत आवश्यकता थी। महर्षि दयानंद ने भारतीयों को धार्मिक और सामाजिक दुर्बलताओं के प्रति सचेत किया है और स्वदेश प्रेम का पाठ पढ़ाया जिसके परिणामस्वरूप स्वदेशी आंदोलन, जातिभेद उन्मूलन, अछूतोद्धार जैसे आंदोलन प्रारंभ हुए। 1905 के बंगाल विभाजन से स्वदेशी आंदोलन को और बल मिला। बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध इसी प्रकार के आंदोलनों से भरा पड़ा है जहां अंग्रेजों के आर्थिक शोषण से मुक्त होने के लिए स्वदेशी आंदोलन चलाया गया। कुल मिलाकर एक सजग समाज और समय की नब्ज़ पहचानने वाला समाज हमेशा से प्रासंगिक रहा है।

शिक्षा सजग समाज की आवश्यकता है और इसलिए शिक्षा का उद्देश्य बहुपयोगी व बहुआयामी है। अतः निःसंदेह शिक्षा की सार्थकता मात्र शिक्षित होने में नहीं अपितु समाजोपयोगी होने में है। शिक्षा की गतिशीलता का कारण ही परिवर्तनशील होने की आवश्यकता में निहित है। और यदि इस परिवर्तनशीलता के लिए अनिवार्य शिक्षा की मुख्यधारा को बदलना है तो उनमें प्रचलित तरीकों को बदलना होगा।

शिक्षा पद्धति ने अत्यंत विचार विमर्श के उपरांत मूल्यांकन पद्धति तो अपनाई परंतु वर्तमान समय में उस मूल्यांकन पद्धति को भी सुधार की आवश्यक्ता है। सबसे महत्वपूर्ण यह जानना है कि मूल्यांकन परंपरा किसके लिए चाहिए संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था के लिए, विद्यालय के लिए या विद्यार्थी के लिए? वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में आलोचनात्मक दृष्टि से सुधार की आवश्यकता है। परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि हमारा मानसिक नजरिया हमें शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में आलोचनात्मक दृष्टि से सोचने की अनुमति भी नहीं देता। हालांकि मूल्यांकन इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सकारात्मक दृष्टि प्रदान करता है। परंतु उस दृष्टि से हम केवल सफल–असफल, पास–फेल छांटते रहे तो यह भी अपने मार्ग पर सही नहीं चल सकेगा।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2005 के अनुसार ''एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक फीडबैक फायदा होता है।''[1]

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज में शिक्षा सामाजिक नियंत्रण व्यक्तित्व निर्माण तथा सामाजिक व आर्थिक प्रगति का मापदंड होती है। भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश प्रतिरूप पर आधारित है जिसे सन 1835 में लागू किया गया। 1855 में प्रारंभ इस शिक्षा पद्धति के एक सदी तक प्रयोग के बाद भी 1935 ई. में भारत की साक्षरता 10 प्रतिशत के आंकड़े को भी पार नहीं कर पाई। इससे भी ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि स्वतंत्रता के बाद विश्वविद्यालयों में उच्च षिक्षा व प्राविधिक शिक्षा का स्तर तो बढ़ा परंतु प्राथमिक शिक्षा का आधार दुर्बल होता चला गया। सबसे ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण तो यह रहा कि हमारे यहां नैतिक विचार व स्वतंत्र चिंतन को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। ऐसी ही एक हास्यस्पद स्थिति तो यह है कि एक ओर तो बच्चों को शिक्षा के नाम पर खिचड़ी का प्रलोभन दिया जा रहा है और दूसरी ओर महंगे संसाधनों की सहायता से दुनिया जहान का ज्ञान परोसा जा रहा है।

विद्यार्थी संख्या में संख्यात्मक वृध्दि होती तो दिख रही है परंतु गुणात्मक अवनति के सुधार का कोई प्रयास नहीं है। शिक्षा ही गुणवत्ता का आकलन करने के लिए मूल्यांकन की विधियां अत्यंत आवश्यक होती है परंतु सीखने के परिणामों का छोटी और बड़ी परीक्षाओं के माध्यम से आकलन करने की प्रक्रिया के फलस्वरुप नीति निर्माताओं ने शिक्षा के समग्र उद्देश्य तथा अभिप्राय की जो उपेक्षा की है, इसे अस्विकार नहीं किया जा सकता है।

शिक्षा व्यवस्था की स्थिति कुछ इस तरह है कि प्राथमिक शिक्षा से लेकर प्रौढ़ शिक्षा तक लूट खसोट की स्थिति है, शिक्षा का दुर्बल आधार उच्च शिक्षण संस्थानों का अपनी सशक्त भूमिका से अलग हटकर तथा अध्यापकों का पेषेवर दृष्टिकोण वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए नया संकट उत्पन्न कर रहा है। प्रत्येक दस वर्षों में पाठ्यपुस्तक बदल दी जाती है लेकिन मूल आवश्यकता मूलभूत स्वरूप परिवर्तित कर इसे रोजगारोन्मुख बनाने की है।

इसके लिए इस प्रमुख अंतर को समझ लेना चाहिए कि रोजगार से डिग्री या डिग्री से रोजगार।

स्नातक शिक्षा व स्नातकोत्तर शिक्षा क्रम में लगातार विद्यार्थी संख्या बढ़ रही है, प्रतिवर्ष बढ़ते इस आंकड़े का प्रभाव गुणवत्ता पर भी पड़ रहा है क्योंकि विद्यार्थी संख्या बढ़ रही है पर शिक्षक संख्या और कक्षाओं की गिनती जस की तस है।

बोर्ड और विद्यापीठ मात्र परीक्षा लेने का कारखाना बनकर रह गए हैं। परीक्षा मूल्यांकन का एक माध्यम हो सकती है परंतू संपूर्ण मूल्यांकन की स्थिती में इस पद्धति में भी कुछ भेद या कमियां नजर आती हैं। दूसरी ओर आंतरिक मूल्यांकन कोई हल न होकर एक समस्या बनकर रह गया है, फिर भी इसे उच्च शिक्षा से जोड़ा जाना सोचनीय है। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद सी.बी.एस.ई. में अपनाई जानेवाली आंतरिक मूल्यांकन पद्धति को राज्य माध्यमिक शिक्षा परिषद में भी अपनाया गया नतीजतन महाविद्यालय में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थियों के बीच घमासान प्रतिस्पर्धा खड़ी हो गई। स्पर्धा भी ऐसी जहां सभी एक से लेकर दस तक समान अंक से दौड़ते हैं, एक गुना भाग भी न कम होता है न ज्यादा।

निःसंदेह यह आंतरिक मूल्यांकन पद्धति प्रारंभ करने के पीछे का उद्देष सकारात्मक था, न्यायसंगत था, परंतु सभी को समदुःखी समझ कर एक ही नाप की दवा पिला देने के कारण अब हमारे पास याने महाविद्यालय व्दार पर सिर्फ भीड़ खड़ी है, बेहतरीन विद्यार्थियों की भीड़, औसत विद्यार्थियों की भीड़। क्रमशः 95 प्रतिशत से लेकर 55 प्रतिशत पानेवाले विद्यार्थियों का समूह है एक या दो की संख्या नहीं। सबसे भयानक स्थिति यह है कि 95 प्रतिशत पानेवाला भी इस संदेह में है कि उसे मनचाहा पाठ्यक्रम मिलेगा भी या नहीं। जहां एक ओर विद्यार्थियों पर दबाव बढ़ रहा है मनोवांछित महाविद्यालयों के कट ऑफ का तो वहीं दूसरी ओर महाविद्यालय भी अपनी साख और गुणवत्ता के स्तर को लेकर कम परेशान नहीं है। निजी शिक्षण संस्थान मनचाहा डोनेशन लेकर शिक्षा के स्तर में चुनौतियों को अच्छा खासा योगदान दे रहे हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ने एक और प्रश्न को जन्म दे दिया है कि षिक्षा से व्यक्ति का आत्मविश्वास बढ़ता है या घटता है क्योंकि जिस तरह से अपने भविष्य को लेकर वर्तमान पीढ़ी जूझने लगी है, वहां आत्मविश्वास भी संदिग्ध अवस्था में ही मिलता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली गैर तकनीकी छात्र–छात्राओं की एक ऐसी फौज तैयार कर रही है, जो आखिर में अपने परिवार और समाज पर बोझ बनकर रह जाएंगे। शिक्षा से राष्ट्र निर्माण, चरित्र निर्माण, मौलिक शिक्षा, नैतिक मूल्य जैसे विषयों को प्रधानता तो क्या महत्व भी नहीं दिया जा रहा है।

आंतरिक मूल्यांकन पद्धति के अंतर्गत विदयार्थियों को लगभग हर विषय से संबंधित प्रकल्प दिए जाते है, जिसके आधार पर आंतरिक मूल्यांकन के कुछ अंक होते हैं। परंतु यह प्रकल्प पूर्ण करने के लिए विद्यार्थी न तो शिक्षक की सहायता लेता है, न परिवार की, न पुस्तक की अपितु वह पूरी तरह से 'गुगल' के दायरे में कार्य करता है। जिससे बनी बनाई सामग्री के प्रस्तुतीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है जो विद्यार्थी का कार्य होना चाहिए वह उपकरण कर रहा है। जब विद्यालयीन जीवन में स्थिति यह है तो महाविद्यालयीन परिवेश इससे अछूता कैसे रह सकता है।

मेडिकल और इंजीनियर की प्रवेष पूर्व परीक्षाओं में तो इतना खिचाव है कि विद्यार्थी के साथ–साथ पुरा परिवार असंमजस की स्थिति में रहता है। इतनी तरह की प्रवेश पूर्व परीक्षाओं के उपरांत भी विद्यार्थी को समर्पित डॉक्टर या इंजीनियर नहीं कह सकते।

'श्री राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री बनते ही राष्ट्र के नाम अपने संदेश में 5 जनवरी 1985 को एक ऐसी शिक्षा नीति का वचन दिया जो कि राष्ट्र को 21 वीं सदी में प्रवेश के लिए वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टि से तैयार करे। उन्होंने कहा ''शिक्षा ऐसी हो जो राष्ट्रीय सम्बध्दता तथा कार्य–नैतिकता को बढ़ावा दे। प्रत्येक विद्यार्थी को अपने शानदार स्वतंत्रता संग्राम तथा राष्ट्रीय एकता में उसके महत्व के विषय में सम्यक रूप से अवगत कराना चाहिए। हमारे स्कूलों और कॉलेजों को भारत की प्राचीन विरासत तथा संस्कृति के विषय में युवा पीढ़ी को जानकारी देनी चाहिए। [2]

1985 में कहे गए वक्तव्य आज भी प्रासंगिक हैं, हम मूल्यांकन की आवश्यक्ता व अनिवार्यता को नकार नहीं सकते परंतु वर्तमान में परीक्षा पध्दति व आंतरिक मूल्यांकन पद्धति में परिवर्तन व सुधार की नितांत आवश्यकता है। शिक्षा यह हर किसी का मौलिक अधिकार है, इससे वंचित रहना उचित भी नहीं परंतु रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रम की उपलब्धि के लिए हम चरित्र निर्माण को प्राथमिकता नहीं दे पा रहे हैं। समय की मांग 'आदर्श' की निर्मिति की ओर अधिक है।

होना यह चाहिए कि आंतरिक मूल्यांकन हेतु जो अंक नियोजन किया जाए वह मौखिक, नैतिक शिक्षा, इतिहास व सांस्कृतिक मूल्य आधारित हो जिससे शिक्षा में लाभान्वित समाज की निर्मिति हो, मात्र आर्थिक रूप से सक्षम शिक्षित वर्ग की नहीं। बीस–बीस अंकों की सहायता से एक कतार में श्रेष्ठ विद्यार्थियों को खड़े करने के बजाय लघु प्रकल्पों की उपयोगिता बढ़ानी होगी। भाषा और मानसशास्त्र जैसे विषयों के महत्व को समझना होगा। सॉफ्ट स्किल, कम्यूनिकेशन स्किल के साथ–साथ सृजनात्मक लेखन की उपयोगिता व आवश्यकता को समझना आज की मांग है। शिक्षा से रोजगार की अपेक्षा रखने को नकारा नहीं जा सकता। परंतु एक पाठ्यक्रम चुनने के बाद अन्य विषयों से नियोजन की सहायता से अतिरिक्त योग्यता की क्षमता को बढ़ावा अवश्य दिया जा सकता है।

रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रम, परीक्षा पद्धति मे पास–फेल आधारित योग्यता प्राप्त विद्यार्थी, आंतरिक मूल्यांकन से बनते एक जैसे छात्र–छात्राएं इन सब असमंजस की स्थिति हेतु शिक्षा पद्धति में निश्चित रूप से मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता है।

"The Teacher who tells is a poor Teacher
The Teacher who explains is an average Teacher
The Teacher who demonstrates is a good Teacher
The Teacher who inspires the students is the best Teacher" 3

यदि शिक्षक या शिक्षा पद्धति जीवन की नैतिकता, राष्ट्र की अनिवार्यता, समाज व संस्कृति की मौलिकता हेतु उपयोगी न हो सकी तो सार्थक नहीं हो पाएगी और हमें इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है। शिक्षक और शिक्षा पद्धति प्रेरणादायी हो यही वर्तमान में मूल्यांकन पद्धति की मांग है।

संदर्भ सूची

1. ले.– रवीन्द्र अग्निहोत्री, पु. – भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएं, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रकाशन– रिसर्च पब्लिकेशन इन सोशल साइंसेस, चतुर्थ संस्करण, पृ. क्र. 22
2. ले.– जे. सी. अग्रवाल, पु.– नई शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष – 1986, पृ. क्र. 12
3. ले.– दयालचंद्र सोनी, पु.– अनौपचारिक शिक्षा का सही स्वरूप, राजकमल एज्युकेशनल ट्रस्ट, नई दिल्ली, 32ए संस्करण वर्ष– 1990, पृ. क्र. 112